हाइफा युद्ध : भारतीयों के पराक्रम का स्वर्णिम पृष्ठ जिससे हमें वंचित रखा गया

पराजय का इतिहास लिखने वाले इतिहासकारों ने बड़ी सफाई से भारतीय योद्धाओं की अकल्पनीय विजयों को इतिहास के पन्नों पर दर्ज नहीं होने दिया। शारीरिक तौर पर मरने के बाद जी उठने वाले देश इजरायल की आजादी के संघर्ष को जब हम देखेंगे, तब हम पाएंगे कि यहूदियों को 'ईश्वर के प्यारे राष्ट्र' का पहला हिस्सा भारतीय योद्धाओं ने जीतकर दिया था। वर्ष 1918 में हाइफा के युद्ध में भारत के अनेक योद्धाओं ने अपने प्राणों का बलिदान दिया। समुद्र तटीय शहर हाइफा की मुक्ति से ही आधुनिक इजरायल के निर्माण की नींव पड़ी थी। इसलिए हाइफा युद्ध में भारतीय सैनिकों के प्राणोत्सर्ग को यहूदी आज भी स्मरण करते हैं। इजरायल की सरकार आज तक हाइफा, यरुशलेम, रामलेह और ख्यात के समुद्री तटों पर बनी 900 भारतीय सैनिकों की समाधियों की अच्छी तरह देखरेख करती है।

इजरायल के बच्चों को इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में भारतीय सैनिकों के शौर्य और पराक्रम की कहानियाँ पढ़ाई जाती हैं। प्रत्येक वर्ष 23 सितंबर को भारतीय योद्धाओं को सम्मान देने के लिए हाइफा के महापौर, इजरायल की जनता और भारतीय दूतावास के लोग एकत्र होकर हाइफा दिवस मनाते हैं। जहाँ, एक तरफ हमारे लिए गौरव की बात है कि इजरायल के लोग भारतीय योद्धाओं के बलिदान को अब तक सम्मान दे रहे हैं। वहीं, दूसरी ओर दु :ख की बात है कि अपने ही देश भारत में इस महान जीत के नायकों के शौर्य के किस्से पढ़ाये और सुनाये नहीं जाते हैं। हालाँकि भारतीय सेना जरूर 23 सितंबर को हाइफा दिवस मनाती है। अब हम समझ सकते हैं कि भारत और इजरायल के रिश्तों में सार्वजनिक दूरी के बाद भी जो गर्माहट बनी रही, वह भारतीय सैनिकों रक्त की गर्मी से है।

भारतीय योद्धाओं के पराक्रम और साहस को समझने के लिए हाइफा युद्ध के पन्ने पलटने होंगे। हाइफा का युद्ध मानव इतिहास का सबसे बड़ा और अपनी तरह का आखिरी युद्ध है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान तुर्की साम्राज्य से इजरायल के हाइफा शहर को आजाद कराने के लिए ब्रिटिश सेना की सहायता के लिए जोधपुर, मैसूर और हैदराबाद से सैनिकों को भेजा गया था। चूँकि हैदराबाद के निजाम द्वारा भेजी गई टुकड़ी में लगभग सभी सैनिक मुस्लिम थे, इसलिए ब्रिटिश सेना के अधिकारियों ने उन्हें सीधे युद्ध के मैदान में नहीं उतारा। निजाम के सैनिकों को युद्ध बंदियों के प्रबंधन और देखरेख का कार्य सौंपा गया। जबकि मैसूर और जोधपुर की घुड़सवार सैन्य टुकडियों को मिलाकर एक विशेष इकाई बनाई गई थी।

तुर्की, ऑस्ट्रिया और जर्मनी की संयुक्त साधन सम्पन्न शक्तिशाली सेना के विरुद्ध भारतीय सैन्य दल

का नेतृत्व जोधपुर के मेजर दलपत सिंह शेखावत ने किया था, जो इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। अदम्य साहस और सैन्य रणनीति का प्रदर्शन करके वाले मेजर दलपत सिंह शेखावत को हाइफा के नायक के रूप में जाना जाता है। हाइफा का युद्ध इसलिए बड़े युद्धों में शामिल है, क्योंकि इस युद्ध में इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास की विजय हुई थी। एक ओर तुर्की, जर्मनी और ऑस्ट्रिया की संयुक्त सेना अपनी चौकियों पर मजबूती से जमी हुई थी। उनके पास तोप, बम और बंदूक सहित अत्याधुनिक हथियार थे। जबकि भारतीय सैनिकों ने उनका मुकाबला केवल तलवार और भालों से किया। उन्होंने पैदल और घोड़ों पर सवार होकर युद्ध न केवल लड़ा, बल्कि अकल्पनीय विजय भी प्राप्त की। यह दुनिया के इतिहास में घुड़सवार सेना का अंतिम महान अभियान था। इसके साथ ही यह सैन्य इतिहास में एकमात्र घटना है, जब एक घुड़सवार सेना ने सबसे कम समय में सुरक्षित और चाक-चौबंद शहर पर कब्जा कर लिया।

हाइफा पहुँचने के बाद जब ब्रिटिश सेना को दुश्मन की मोर्चाबंदी और ताकत के बारे में पता चला तब ब्रिगेडियर जनरल एडीए किंग ने सेना को वापस बुला लिया था। ब्रिगेडियर का निर्णय उचित ही था, क्योंकि तुर्की की सेना सुरक्षित और युद्ध की दृष्टि से लाभप्रद स्थिति में थी। परंतु, भारतीय योद्धा सेना को वापस बुलाने के निर्णय से खुश नहीं थे। उन्होंने कहा कि 'हम अपने देश में किस मुंह से जाएंगे। अपने देश की जनता को कैसे बताएंगे कि शत्रु के डर से मैदान छोड़ दिया। युद्ध के मैदान में पीठ दिखाकर भागना उचित नहीं माना जाता। इसलिए हम तो लड़कर यहीं वीरगति प्राप्त करना पसंद करेंगे।' भारतीय सैनिक सीधे मौत के मुँह में जाने की इजाजत माँग रहे थे। काफी समझाने के बाद भी जब भारतीय सैनिक नहीं माने, तब ब्रिटिश सेना के अधिकारी समझ गए कि यह असली योद्धा हैं, इन्हें रोका नहीं जा सकता। भारतीय योद्धाओं के दृढ़ संकल्प और अदम्य साहस को देखकर उन्हें हमले की अनुमति दे दी गई।

तलवार और भालों से सज्जित घुड़सवार एवं पैदल भारतीय सेना ने 23 सितंबर को सुबह 5 बजे हाइफा की ओर बढ़ना प्रारंभ किया। भारतीय सेना का मार्ग माउंट कार्मल पर्वत श्रृंखला के साथ लगता हुआ था और किशोन नदी एवं उसकी सहायक नदियों के साथ दलदली भूमि की एक पट्टी तक सीमित था। जैसे ही सेना 10 बजे हाइफा पहुँची, वह माउंट कार्मल पर तैनात 77 एमएम बंदूकों के निशाने पर आ गए। परंतु, भारतीय सेना का नेतृत्व कर रहे जवानों ने यहाँ बहुत सूझबूझ दिखाई। मैसूर लांसर्स की एक स्क्वाड्रन शेरवुड रेंजर्स के एक स्क्वाड्रन के समर्थन से दक्षिण की ओर से माउंट कार्मल पर चढ़ी। उन्होंने दुश्मनों पर अचानक आश्चर्यचकित कर देने वाला हमला कर कार्मल की ढलान पर दो नौसैनिक तोपों पर कब्जा कर लिया। उन्होंने दुश्मनों की मशीनगनों के खिलाफ भी वीरता के साथ आक्रमण किया। उधर, 14:00 बजे 'बी' बैटरी एचएसी के समर्थन से जोधपुर लांसर्स ने हाइफा पर हमला किया। मजबूत प्रतिरोध के बावजूद भी लांसर्स ने बहादुरी के साथ दुश्मनों की मशीनगनों पर सामने से आक्रमण किया। 15:00 बजे तक भारतीय घुड़सवारों ने उनके स्थानों पर कब्जा कर तुर्की सेना को पराजित कर हाइफा पर अधिकार कर लिया। – पुस्तक : इजरायल में भारतीय वीरों की शौर्यगाथा, लेखक : रवि कुमार, पृष्ठ-21 और 22

भारतीय सैनिकों की कुशल रणनीति से प्राप्त अकल्पनीय विजय के कारण इस युद्ध को इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज किया गया है। फौजी पाठ्यक्रमों में इस युद्ध को पढ़ाया जाता है। मिस्र और

फिलिस्तीन के सैन्य अभियान (वॉल्यूम-2) में भारतीय घुड़सवार सैन्य टुकड़ी की कार्रवाई को अद्वितीय बताया गया है- 'पूरे अभियान के दौरान घुड़सवार सेना की कार्रवाई के समान कोई अन्य युद्ध नहीं लड़ा गया था। मशीनगन की गोलियाँ भी बार-बार तेजी से आगे बढ़ रहे घोड़ों को रोकने में असफल रही थीं' Marquess of Anglesey की पुस्तक 'ब्रिटिश फौज का इतिहास' में भी इस युद्ध का विवरण दिया है- '… यह निश्चित रूप से विश्व के इतिहास में एकमात्र अवसर था, जब एक सुरक्षित शहर पर तेजी से बढ़ती घुड़सवार सेना द्वारा कब्जा कर लिया गया।' इसी तरह जनरल एलेनबी ने अपनी डाक के मुख्य भाग में विशेष रूप से भारतीय योद्धाओं और उनका नेतृत्व कर रहे मेजर दलपत सिंह शेखावत की वीरता का उल्लेख किया है- 'जब मैसूर लांसर्स माउंट कार्मल की ढलानदार चट्टानों को पार कर रहे थे, जोधपुर लांसर्स धरती को रौंदते हुए, दुश्मनों की मशीनगन पर चढ़ाई करते हुए शहर में तेजी से आए, वहाँ रास्तों पर बहुत से तुर्कों पर भाले से प्रहार किया। कर्नल ठाकुर दलपत सिंह (मिलिट्री क्रॉस) ने वीरता के साथ आक्रमण का नेतृत्व किया।' यहाँ बताना उचित होगा कि मिलिट्री क्रॉस उस समय ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय सैनिकों को दिया जाने वाला सर्वोच्च वीरता सम्मान था। मेजर दलपत सिंह शेखावत के साथ ही कैप्टन अनूप सिंह और सेकंड लेफ्टिनेंट सगत सिंह को भी वीरतापूर्वक लडऩे के लिए सर्वोच्च वीरता सम्मान मिलिट्री क्रॉस से सम्मानित किया गया।

लगभग 2000 वर्ष से अपनी जन्मभूमि से बेदखल, दुर्व्यवहार और अमानवीय यातनाओं के शिकार यहूदियों के लिए 23 सितंबर, 1918 को तुर्की साम्राज्य से हाइफा शहर की मुक्ति का महत्त्व बहुत अधिक था। यूरोप सहित दुनिया के अन्य हिस्सों में रह रहे यहूदियों ने जब हाइफा की मुक्ति का समाचार सुना तो वे खुशी से झूम उठे। उन्हें अपना संकल्प पूरा होते दिख रहा था। दुनिया में यहाँ-वहाँ फैले यहूदी अपनी मातृभूमि इजरायल को पुन : प्राप्त करने के अपने संकल्प का प्रतिदिन स्मरण करते थे। प्रत्येक यहूदी दूसरे यहूदी से विदा लेते समय यह कहना कभी नहीं भूलता था कि 'अगली मुलाकात/सुबह यरुशलेम में होगी।'

हाइफा की मुक्ति से उन्हें अपना स्वप्न पूरा होता दिख रहा था। इजरायल से निष्कासन के बाद यहाँ-वहाँ गुजर-बसर कर रहे यहूदियों ने सन् 1919 से हाइफा में पहुँचना शुरू कर दिया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने अपने लिए अलग देश इजरायल की माँग जोर-शोर से उठाना प्रारंभ की दी। अंतत : यहूदियों के प्रयास रंग लाए और 30 साल बाद वह दिन आ गया, जब उन्हें 1948 में अपना देश इजरायल प्राप्त हुआ। हाइफा शहर की मुक्ति के बाद भी भारतीय सैनिकों ने ब्रिटिश, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के सैनिकों के साथ मिलकर पूरे इजरायल को मुक्त करावाने के लिए कुछ और लड़ाइयाँ भी लड़ीं। इजरायल की आजादी के लिए लड़े गए विभिन्न युद्धों में लगभग 900 साहसी भारतीय सैनिकों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया है।

भारत के प्रति इजरायल का जो कृतज्ञता का भाव है, संभवत : उसके पीछे इन्हीं महान योद्धाओं का बलिदान है।

image.png

(लोकेंद्र सिंह राष्ट्रवादी विषयों पर सतत् लेखन करते हैं, ये लेख उनके ब्लॉग https://apnapanchoo.blogspot.com/ से लिया गया है)